Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-4(A)| April-2026

Original Article

मिथिला में चित्रकला एवं लोक चेतना

अशोक कुमार यादव
सामाजिक विज्ञान संकाय (इतिहास)
ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

Manuscript ID:
JRD -2026-180426
ISSN: 2230-9578
Volume 18
Issue 4(A)
Pp 133-135
April- 2026
Submitted: 24 Mar. 2026
Revised: 31 Mar. 2026
Accepted: 15 Apr. 2026
Published: 30 April. 2026

सारांश

विश्व दर्शन के इतिहास में प्रसिद्धि पा चुकी मिथिला की भूमि का पल्लवित एवं पोषित लोककला का संसार अपने आप में अद्वितीय है। जगत के लिए मंगलकामना और अपने जीवन को सुन्दर बनाने के लिए मिथिलावासी ने साहित्य और दर्शन के साथ–साथ लोककलाओं का वरण किया। अपने–आप को उत्सर्ग करनेवाले मनीषियों ने उच्चवर्गों को ऐसे संस्कार प्रदान किये हैं कि अनायास ही उनके कर्मों से कला–सृजन की छवि झलक जाती है। प्राचीन काल से ही मिथिला की प्रचलित लोक–कलाओं की चर्चा साहित्य में वर्तमान है। ये लोक–कलाएँ, गीत, नृत्य, नाट्य, कथा और चित्र आदि के रूप में विद्यमान है। मिथिला में लोक–चित्र–कलाओं की दो परंपराएँ वर्तमान हैं। वैसे तो मुख्यतया दोनों तरह की लोक–कलाओं को मिथिला–लोक–चित्रकला के नाम से जाना जाता है, परंतु मिथिला में दूसरी लोक–कला के रूप में गोदना चित्रकला की परंपरा वर्तमान है।

भूमिका

मिथिला–लोकचित्र का संबंध प्रायः मिथिला के उच्च वर्गों से रहा है, लेकिन गोदना चित्रकला का संबंध निम्नवर्गों से रहा है। दोनों लोक–कलाओं में मिथिला की सांस्कृतिक भावनाओं के दर्शन होते हैं। लोक–चित्रकला की पहली परंपरा में पूर्णतया धार्मिक और संस्कृतिक चित्र बनाये जाते हैं। दूसरी परंपरा में सामाजिक पक्ष के साथ–साथ लोक–जीवन से संबंधित चेतना की कलात्मक छवियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। मिथिला की ललनाओं ने इसे अपने मस्तिष्क और उंगलियों में सहेज कर रखा है। पहली कला का कैनवास भूमि और दीवाल रहा है, परंतु दूसरी लोक–परंपरा की चित्रकला का कैनवास उनका शरीर ही रहा है, क्योंकि मिथिला के अद्धसभ्य जातियों के बीच प्रचलित चित्रांकन की इस परंपरा को सार्थक और स्थिर रखने के लिए उनके पास देह के सिवाय कोई साधन नहीं था। प्राचीन समय से अंग–आलेखन की इस परंपरा को कायम रखने के लिए शरीर पर स्थायी रूप से चित्रांकन के निमित्त जिस तकनीक को अपनाया गया, वह अत्यंत कष्टकारक है। गोदना लोक–चित्रकला के संबंध में अनेक धारणाएँ प्रचलित हैं। यह प्राकृतिक सत्य है कि मृत्यु के साथ मनुष्य का कुछ भी नहीं जाता है। नजीर ने लिखा है सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा। लेकिन गोदना गोदवाने वाले अपने आप को सौभाग्यशाली समझते हैं, क्योंकि मृत्यु के बाद गोदना ही उसके साथ जाता है। प्रायः आदिवासी और अर्द्ध आदिवासी समाज में यह धारणा अत्यंत प्रचलित है, इसलिए राबर्ट ब्रैन ने गोदना को दूसरी दुनिया का पासपोर्ट कहा है। (आजकल पृ० सं० 29, फरवरी 1995) मिथिला में यह प्रचलित है कि अविवाहिता यदि माथे पर बिन्दी गोदवाती है तो उसे अच्छा घर–वर मिलेगा। गरदन पर गोदवाने से मृत्यूपरांत उसे स्वर्ग में माँ से मुलाकात होगी। हाथ–पैर पर गोदना गोदवाने से मृत्यु से पूर्व कोई घृणित कार्य नहीं करेगी। पैर पर गोदवाने से अगले जन्म में वह कागा नहीं बनेगी और अंततः यही धारणा है कि गोदना गोदवाने से स्त्री का अहिवात रहेगा। महेश चन्द्र शांडिल्य ने लिखा "गुदना के चित्रगत रेखांकन उपादेय वस्तुओं के प्रतीक होते हैं। अधिकांश ऐसे गुदना चिह्नों का आलेखन करवाया जाता है, जिनका जीवन से सीधा संबंध है। गुदना सौन्दर्य–वृद्धि का तो एक विशिष्ट साधन माना ही गया है, लेकिन आदिम समाज में गुदना–चिह्नों के प्रति विशेष लगाव व आस्था निहित है।" (आजकल अंक आलेखन, फरवरी 1995, पृ० 28–29) ऐसी ही आस्थाओं में और भी अनेक धारणाएँ प्रचलित हैं, जिससे उन वर्गों में परस्पर स्नेह–प्रेम–भक्ति आदि की भावनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। डॉ० शिववंश पाण्डेय ने एक लेख में लिखा है। "गोदना–विधि से उत्कीर्ण सामग्री जीवन पर्यनत दृश्यमान रहती है, इसलिए संस्मरणीय घटनाओं एवं सदा स्मरणीय व्यक्तियों के द्वारा अपने अंगों पर गोदवाने की परंपरा प्राचीन काल से ही चली आ रही है।" (लोक संस्कृति में गोदना का महत्व डॉ० शिववंश पाण्डेय, राष्ट्रभाषा परिषद्, अपैल 17–18 मार्च, पृ० 66)

इस प्रकार देखा जाए तो अपने शरीर के यथायोग्य स्थान पर महिलाएँ अपना नाम, पति का नाम, इष्टदेव, अन्य देवी–देवताओं के नाम एवं चित्र आदि गोदवाती हैं। सांस्कृतिक प्रतीक कोशकार श्री शोभानाथ पाठक लिखते हैं– "सामान्यतः स्त्रियाँ विवाह होने के बाद अवश्य गोदना गोदवाती हैं। ग्रामीण जीवन में यह मान्यता है कि विवाह के पश्चात् शीघ्र गोदना गोदवाना पुण्यकारी होता है। यही नहीं, अपितु अनजाने में हुए पाप से भी यह रक्षा करता है। ये गोदने प्रायः हाथ की कलाई पर, बाँह पर गोदवाने की प्रथा है।" (सांस्कृति प्रतीक कोश–शोभनाथ पाठक, पृ० 96)

गोदना पहचान का भी माध्यम है; क्योंकि इससे हर जगह के समुदाय की पहचान भी होती है। भौगोलिक परिवेश के अनुरूप गोदने की प्रकृति भी बदल जाती है। संपूर्ण संसार में न जाने कितने ऐसे समुदाय होंगे जो अपनी मानसिकता, अपने पर्यावरण के सानिध्य में पाये जानेवाली वस्तुओं, जीवों की आकृतियाँ अंकित करते हैं, जिनसे उनकी अपनी पहचान बन सके। इस संबंध में किसी शायर की पंक्ति का उल्लेख डॉ० शिववंश जी ने किया है–

"घर से निकलो तो पता जेब में रखकर निकलो,
हादसे चेहरे की पहचान मिटा देते हैं।"

सृजन में पीड़ा का एहसास सांसारिक सत्य है। कला भी सृजन का अंश है। हर्बर्ट रीड ने कहा है कि कला रमणीय वस्तु रूपों के सृजन का प्रयत्न होती है।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
अशोक कुमार यादव, सामाजिक विज्ञान संकाय (इतिहास) ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा.

How to cite this article:
यादव, अशोक. कुमार. (2026). मिथिला में चित्रकला एवं लोक चेतना. Journal of research & development, 18(4(A)), 133–135. https://doi.org/10.5281/zenodo.20390852

Quick Response Code:
Website: https://jrdrvb.org/
DOI: 10.5281/zenodo.20390852
OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-4(A)| April-2026

प्राचीन समय से ही गोदनेकी कला अत्यंत कष्टकारक है। पहले गोदनहारी तुरई अथवा सेम के पते का रस निकालकर धतूरे के दूध में मिलाती थी और उसमें काजल मिलाकर एक घोल करती थी, फिर बबूल के कांटे से शरीर पर गोदने का काम करती थी। गोने हुए स्थान पर हल्दी आदि का लेप लगाकर कुछ दिनों तक छोड़ देती थी, उसके बाद यह रंग पक्का हो जाता था और जीवन पर्यनत तक रहता था। कालांतर में ऐसी प्रक्रिया में भी परिवर्तन हुए हैं। अब बबूल के कांटे की जगह धातु की सूई का उपयोग किया जाता है। गोदने के लिए अभी तो मशीन आदि की भी सुविधा हो गई है, परंतु मिथिला में आज भी अधिकतर जगहों अर्थात् ग्रामीण क्षेत्रों में पारम्परिक विधि से गोदना गोदने की प्रथा है। गोदनहारी के लिए यह आजीविका का साधन भी है और कला की साधना भी।

गोदने की यह परंपरा कब प्रारंभ हुई, यह कहना अत्यंत कठिन है; परंतु हमारे प्राचीन साहित्य में किसी न किसी रूप में इसकी चर्चा अवश्य होती है। मैं समझती हूँ इसका चलन उस समय से हुआ होगा, जबसे आदिम मानव में सभ्यता के विकास की प्रक्रिया प्रारंभ हुई होगी। जब से उसने अपने घर बनाये होंगे और वन्य जीवन में गुफाओं की चट्टानों पर कई आकृतियाँ खींची होंगी, फिर बाद में उन आकृतियाँ को अपनी देह पर ही अंकित किया होगा। जमीन, दीवाल और देह के अलावा उनका कोई कैनवास भी तो नहीं था। ऋषि–मुनि पर्वतों और जंगलों में अपनी कृतियाँ भोजपत्र आदि पर अंकित करते थे जिन्हें वर्षों से बचाकर रखा जा सकता था। परंतु, गोदना कला मूलतः उन समुदायों के बीच पल्लवित एवं पोषित हुई, जिन्हें संगृहीत करने का कोई साध नही उपलब्ध नहीं हुआ होगा, अन्यथा उसके भी कोई प्राचीन संग्रह उपलब्ध होते। देह पर अंकित आकृतियाँ ही उनकी किताब थीं, जिनसे वे प्रेरित होते रहे होंगे, तभी से उनके अंतर में चेतना के बीच प्रस्फुटित हुए होंगे। जिस प्रकार ऋषि–मुनियों ने एकांतवास में साहित्य की साधना की थी, संभवतः गोदना–चित्रकला के मूल में उनकी कोई बड़ी साधना रही होगी। और साधन का उद्देश्य निरर्थक नहीं होता है। भारतवर्ष में इसका उपयोग कई रूपों में किया जाता रहा है। डॉ० सौनिकों के शरीर पर भी उक्त राज्य का राज्यचिह्न या गुप्तचिह्न गोदना के रूप में गोदना दिया जाता था, ताकि किसी संक टमें फंसने या युद्ध–क्षेत्र में हताहत होने या बंदी बनाये जाने की स्थिति में उनकी पहचान हो सके। धार्मिक पंथ या सम्प्रदाय विशेष के अनुयायियों के बीच पंथ एवं सम्प्रदाय के लक्ष्य को गोदना के रूप में उत्कीर्णन की परंपरा देखी गई है। गोदनहारी के माध्यम से गुप्तचरी कराने की बात भी लोककथाओं, लोक, वार्ताओं में सुनने को मिलती है। परिषद् पत्रिका, अप्रैल 17–18 मार्च, पृ० 67 मिथिला में गोदना सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में भी पनपा। गोदना गोदवाने की यह प्रथा समस्त वर्गों के बीच प्रचलित रही हैं। मिथिला में कर्नाट राजवंश 10वीं शताब्दी के पतन के बाद मुगल साम्राज्य का प्रभत्व रहा। उसके अत्याचार से बचने के लिए यहाँ की स्त्रियाँ गोदना गोदवाना अनिवार्य समझती थीं। क्योंकि नारी के शील की रक्षा इससे होती थी। मुगलों की ऐय्यशी का शिकार वैसी महिलाएँ कभी नहीं होती थीं, जिसने गोदना गोदवा रखा था। बहरहाल मिथिला में गोदना गोदनेवाली को गोदनहारी कहा जाता है जो नट जाति से आती है। इसलिए इसे नटिनिया अथवा खोद्यपारिन भी कहा जाता है। इसकी एक पूरी जमात होती है जो घूम–घूमकर गोदना गोदने का कार्य करती है। चूंकि यह क्रिया अत्यंत कष्टदायक है, इसलिए गोदना गोदते समय गोदनहारी नववधू के साथ हंसी–ठिठोली भी करती है और सूई के गुच्छे चुभोने के साथ–साथ मधुर गीत भी गाती है। मिथिला के सामाजिक कार्यकर्ता श्री कृष्ण कुमार कश्यप ने अपनी मैथिली पुस्तक गोदना चित्र शैली के आमुख में लिखा है– सेर दू सेर धान–पान आ पुरान–धुरान आंगी नूँआ–यैह छलैक नटिनियाक बोइन, देह–हाथ पर गोदना गोदैबाक। पुरबा–पछबाक लहरि जेकाँ प्रेम–योगिनी नटिनिया गीत गबैत अबैल छलि आ तरूणी–युबतीक देह पर अमिट चित्रक एकटा संग्रहालय कढ़ि चल जाइत छलि। संभवत; सूई चुभने की इस पीड़ा को गीत के माध्यम से कम किया जाता है। मानो रोमांचकारी इस पीड़ा का एहसास गीतों में घुल–मिल जाता है। अंग–आलेखन के साथ गीतों का समायोजन उनकी आंतरिक चेतना की परिणति है। एक गीत में सास और बहू के बीच मनुमटाव की भावना व्यक्त किया गया है। बहू अपनी सास से गोदना गोदवाने के लिए पैसा मांगती है, परंतु उनके पैसा न देने पर बहू घर में जाकर किवाड़ बंद कर लेती है। गोदनहारी ऐसी भावनाओं को लक्ष्य करके अत्यंत तन्मयता और मधुरता के साथ गाती है।

"उत्तरहि राज सँ, अयलै नटिनिया रे जान,
जान, बैसी जे गेलै चनन बिरिछिये रे जान।
घर सँ बाहर भेली सुनरी पुतहुए रे जान।
जान, पड़ि गेलै नटिन मुख दिठिये रे जान।
मचिया बैसल तोंहे सासु बरइतिन रे जान।
जान, दिऔ सासु कोशल–गठरिये रे जान।
अइया खौकी भइया खौकी सुनरी पुतहुए रे जान।
जान, कहमा पएबइ कोशल–गठरिये रे जान।
एतवा वचन जँओ सुनलक पुतहुए रे जान।
जान, ठोकि लेलकै बज्जर केबड़िये रे जान।"

गोदना गोदवाने के लिए स्त्री को जब किसी से पैसा नहीं मिलता है, तब वह अपने पति से पैसा मांगती है, वहाँ से भी निराश होने के बाद उसे बहुत पीड़ा होती है और क्रोध भी आता है। पत्नी को क्रोधित होते देख पति अपनी सफाई में कहता है–

"हमरो वचनिया धनि अगिया लगैलकौ रे जान।
जान, सुइया लहरिया कोना सहितएँ रे जान।"

लेकिन स्त्री अत्यंत दुखी हो जाती है। उसे अपने पति की ऐसी सफाई पर भरोसा नहीं होता है। वह तो कहती है– सूई की लहर तो क्षण–दो–क्षण रहेगी, परंतु पति के वचन अधिक दुखदाई हैं।

"सूइया लहरिया बालुम रहितई दू छनमा रे जान"
जान, तोरो वचनिया छतिया बेधलकै रे जान।"

एक दूसरे गीत में सास खूद बहू से गोदना गोदवाने का आग्रह करती है–

"पटना शहर सँ चललै खोदपाड़िन,
केयो समरिया गोदना गोदावह रे जान।
गलिये रे गलिये रेघिया अलापै,
केओ समरिया गोदना गोदावह रे जान।
बिहुंसि सासु बाजल पुतहु गोदना गोदावह रे जान,
नहि हम सासु गोदना रे गोदाएव,
छोटकी ननदिया देत उलहन रे जान,
नहिरा गोदैवह सासु, बनबई सोहागिन
तेरे रे घरबा बालक खेलैवई रे जान।"

एक मिथिला अज्ञात कवि मंझन शेख ने विरहिणी राधा का वर्णन अपनी कविता में किया है। विरहिणी राधा, कृष्णा के न मिलने पर जोगिन बन जाना चाहती है। कृष्ण की खोज में भटकते–भटकते राधा को नटिनिया अर्थात् गोदनहारी से मुलाकात होती है और उससे वह आग्रह करती है कि मेरे शरीर के प्रत्येक अंगों पर कृष्ण के नाम लिख दो। ललाट पर कन्हैया, गाल पर गिरधर, नाक पर नटवर नागर, मुख पर मुरलीधर, गला में गोविन्द, छाती पर घनश्याम, बांह पर बंसुरी–बजैया, लुल्हुआ पर लीलाधर गोदवाकर राधा कृष्णमय हो जाना चाहती है–

"वने–वने घूमि–घूमि पुछथिन हे राधिका
देखल कतहु घनश्याम, हे हम जोगिन बनबै।

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-4(A)| April-2026

बाटहिं रे भेंटि गेल बहिनी नटिनिया
भेटल कतहु मोरा श्याम, हे हम जोगिन बनबै।
अंग–अंग लिखि दे बहिनी साजन सुरतिया
हमरो पिया के लाखो नाम, हे हम जोगिन बनबै।
लिखिहे लिलारे बहिनी सिरी रे कन्हैया
गाले गिरिधारी जी कँ नाम, हे हम जोगिन बनबै।
नाको पर लिखिहुँ बहिनी नटवर रे नागर
मुख पर मुरलीधर जी के नाम, हे हम जोगिन बनबै।
गरा में लिखिहें बहिनी गोविन्द माधव
छतिया में सिरी घनश्याम, हे हम जोगिन बनबै।
बहियाँ में लिखिहें बहिनी बँसुरी बजैया
लुल्हुआ पर लीलाधर के नाम, हे हम जोगिन बनबै।
गाओल मंझन शेख एहो रे झुमरिया
पुरतो राधा तोरो मनकाम, हे हम जोगिन बनबै।"

यहाँ राधा की प्रेम–भक्ति असीम है। मिथिला में ऐसे अनेक गीतों की परंपरा है, जिसमें गोदना चित्रकला की छवि, स्नहे–प्रेम, भक्ति, त्याग, समर्पण आदि के रूप में दृष्टिगोचर होती है। मिथिला में लोकजीवन की परंपरा के अंतर्गत गोदना सामाजिक समरसता का प्रतीक भी बन गया है। मंझन शेख मिथिला के मुस्लिम कवि थे। यहाँ साहित्य और कला के माध्यम से एकता स्थापित की गई है, 'गोदना साम्प्रदायिक सद्भावना की छवि दृष्टिगोचर होती है। 'गोदना' पूर्णतया सांस्कृतिक आस्था के साथ शरीर और मन से जुड़ी हुई लोक–कला है। मिथिला में गोदना लोक–चित्र के अंतर्गत बिन्दी, सूरज, चाँद, तारा, पेड़–पौधा, फल–फूल, लता, झार, नदी, अंकुर, पोधी, आसानी/चटाई, सांप, झिंगा, चौकी, दीप, हाथी, भमरा, पक्षी, मछली, फुलवारी, जानवर, झुम्मर, शिवमंदिर, सीता जी की डाली, नागफाँस, गह्बर, मानव, देवी–देवता, आभूषण, के रूप में हँसुली, मोहरमाल, पैर में कारा, छारा, पाजेब, नुपूर, बाँह पर बाजू, पहुँची, शंखाचूड़ी, कंगन इत्यादि बनाने की परंपरा है। इसके अलावा अपने सानिध्य में रहनेवाली वस्तुओं का चिंत्राकन भी गेदनहारी करती है। गोदना में प्राकृतिक वस्तुओं का चित्रांकन अधिक होता है। किसी रूप में यह प्रतीक ही है। यह पर्यावरण सुरक्षा और उसके प्रति जागरूकता का संकेत भी है। दूसरी ओर गोदना में पारंपरिक देवी–देवताओं, मंदिर स्वास्तिक, दीप, गह्वर आदि के चित्र उन प्राकृतिक प्रतीकों के साथ उकेरे हैं। इससे ईश्वर के प्रति उनकी आस्था प्रकट होती है। तीसरी ओर शरीर के अंगों की सजावट का भी ख्याल गोदना लोक–चित्रकला में रखा गया है। प्राकृतिक प्रतीकों को लेकर विभिन्न आकृतियों में सजावट करना इसकी एक खास पहचान है। महिलाएँ छाती हँसुली इत्यादी गोदवाती हैं। इसके अलावा हाथ में पहुँची, पैर में पायल अथवा कारा–छारा गोदवाने में सजावट की आवश्यकता पड़ती है। चौथी ओर बदलते समय के साथ के अंकन में भी परिवर्तन हुए हैं। 'मिलिटरी' आदि इसके उदाहरण हैं। गोदना से संबंधित कुछ चित्र देखे जा सकते हैं।

निष्कर्ष :–

मिथिला में इस चित्रकला के माध्यम से साक्षरता अभियान भी चलाया जा सकता है, जहाँ साक्षरता दर कम हो। 1990 से 1995 तक दरभंगा की एक संस्था 'भारती विकास मंच' के साथ मिलकर हमने उन चित्रों की आकृतियों से 'हिन्दी वर्णमाला' के अक्षरों को निकाला और प्रयोग के तौर पर मिथिला के वर्ष के आठ महीने तक जल–जमाव वाले क्षेत्र कुशेश्वरस्थान में मुसहर समुदाय के बीच साक्षरता अभियान चलाया। 'स्वीस रेड क्रॉस' स्वीट्जरलैंड द्वारा प्रोयोजित इस कार्यक्रम में हमने शिक्षण सामग्रियाँ तैयार कीं। उन्हें यह समझाया गया कि उनके ही शरीर पर सारे अक्षर अस्त–व्यस्त होकर चिपके हुए है, तो वे क्यों नहीं पढ़–लिख सकते ? अब तो वे जल्दी ही साक्षर होने लगे और अक्षरों की पहचान उन्हें होने लगी है। सामाजिक दायित्व का यह प्रयास था, जिसमें हमें सफलता मिली। सूरज, चाँद की आकृतियाँ, छड़ी, खरी–तिरछी रेखाओं से हिन्दी वर्णमाल के लगभग सभी अक्षर बनाए जा सकता हैं। मिथिला की लोक–चित्रकला के माध्यम से वहाँ के अशिक्षित समाज को शिक्षा और कला के प्रति जागरूक बनाया जा रहा है। इसमें स्वयंसेवी संस्थाओं का विशिष्ट योगदान भी है।

गोदना लोक–चित्रकला के माध्यम से पढ़ाई और कमाई साथ–साथ चल सकती है। गोदना का`अब लोगों ने कागज और कपड़ा पर उतारना प्रारंभ कर दिया है। इससे उनके बीच रोजगार की संभावनाएँ भी बनी हैं। यह सब लोगों में चेतना–विकास से ही संभव हो सका है। कला का उद्देश्य सिर्फ सजावट ही नहीं, बल्कि जीवन और परिवेश के बीच सार्थक चेतना भी जागृत करना है; क्योंकि कला और जीवन के निश्चित संबंध से चेतना का विस्तार होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. मैथिली शैव साहित्य, पृ० 4
2. मिथिला का इतिहास– राम प्रकाश शर्मा, पृ० 6
3. मिथिला की संस्कृति– ईन्द्रनारायण झा
4. मिथिला में अरिपन– तंत्रनाथ झा, पृ० 92
5. मिथिला का इतिहास, पृ० 12–13, रामप्रकाश शर्मा
6. मिथिला का इतिहास, रामप्रकाश शर्मा, पृ० 462
7. मिथिला की प्राचीन देवी–देवता, एम०एन० सत्यार्थी, पृ० 39
8. मिथिला का इतिहास, राम प्रकाश शर्मा, पृ० 458
9. मिथिला का इतिहास, पृ० 460, आइने तिरहुत, पृ० 130
10. मिथिला का इतिहास, पृ० 465 आइने तिरहुत, पृ० 131